सत्ता स्वरूप विमर्श : आचार्य कुन्दकुन्द की दृष्टि में

डॉ. अरिहन्त कुमार जैन

प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद (उत्पन्न होने), व्यय (नाश होने) और ध्रौव्य (स्थिर रहने) की शक्ति है। इस शक्ति को सत्ता कहा जाता है। यह सत्ता कोई भिन्न अस्तित्व वह द्रव्य नहीं है जो जीव पुद्गलादि छह द्रव्यों से बाहर हो। यह शक्ति इन्हीं छह द्रव्यों में विद्यमान या उपस्थित रहती है जो कि इनसे अवियोज्य है अर्थात् इनसे इस शक्ति को अलग (भिन्न) नहीं किया जा सकता। इस सत्ता के कारण ही हम कह सकते हैं कि इस जगत् से भिन्न कोई ऐसा एक ईश्वर या व्यक्ति नहीं है जो इस जगत का रचयिता (कर्त्ता) और शास्ता हो, किन्तु यह छह द्रव्योंमें से प्रत्येक के गुण हैं, कोई चेतन या अचेतन सत्ता या पुरुष नहीं है।

इससे यह भी सिद्ध हुआ कि वस्तुओं को उत्पन्न और व्यय (नष्ट)करने वाली शक्ति इन छह द्रव्यों से बाहर नहीं है और न ही इस जगत से भिन्न। यह शक्ति वस्तुओं के भीतर ही उपस्थित है और यह चेतन-अचेतन दोनों पदार्थों में पायी जाती है।

भारतीय दर्शनों की सत्ता-स्वरूप के सम्बन्ध में विविध अवधारणायें हैं। बौद्धदर्शन में सत्ता को क्षणिक माना गया है। वेदान्तदर्शन में सर्वव्यापक ब्रह्म का ही अस्तित्व है। न्याय-वैशेषिक और मीमांसा दर्शन में सत्ता का अस्तित्व मात्र या जातिरूप माना गया है। सांख्य-योग दर्शन में परिणामि नित्यवाद के रूप में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप स्वीकार किया गया है।

जैनदर्शन के अनुसार उपर्युक्त सभी मान्यतायें एकान्तिक होने से सदोष हैं। आचार्य कुन्दकुन्दकृत पंचास्तिकाय ग्रन्थ में सत्ता की स्वतंत्र तथा मौलिक विवेचना प्रस्तुत की गयी है। उनके अनुसार सत्ता अस्तित्व रूप है और **'अस्तित्त्वं नाम सत्ता'** (नियमसार तात्पर्यवृत्ति ३४) अर्थात् अस्तित्त्व को सत्ता कहते हैं। नयचक्र (गाथा ६१) के अनुसार भी **'अत्थिसहावे सत्ता'** अर्थात् अस्तित्व स्वभाव को ही सत्ता कहा है।

वस्तुतः समस्त पदार्थों में रहने वाली सत्ता सामान्य सत्ता अथवा महासत्ता है। सादृश्य अस्तित्व वाली महासत्ता या सामान्य सत्ता को लेकर आचार्य कुन्दकुन्द का कथन स्पष्ट है कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने से यह सत्ता त्रिलक्षणात्मक है तथा गुण-पर्याय सहित होने से सत्ता द्विलक्षणात्मक है। अनन्त पर्यायों सहित अथवा गुण-पर्यायों सहित होने से सत्ता अनेक रूप भी है, जिसे अवान्तर सत्ता कहा जाता है। पृथक्-पृथक् पदार्थ, पृथक्-

पृथक् गुण, तथा पृथक्-पृथक् पर्यायों का अस्तित्व बनाने वाली अवान्तर सत्ता भी है । इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय में सत्ता का प्रथम बार तात्त्विक, दार्शनिक और मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया गया है ।

आगमिक चिन्तन को आधार बनाकर आचार्य कुन्दकुन्द ने सत्ता को उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप प्रतिपक्षी धर्मों से युक्त,अनेक रूप और पर्यायों से सहित बताया तथा उसी को द्रव्य कहा । द्रव्य, गुण और पर्याय से युक्त होता है । विनाश द्रव्य के नहीं होते बल्कि पर्याय के होते हैं । ये उत्पाद और विनाश तभी घटित हो सकते हैं, जब स्थिति को माना जाय । इस दृष्टि को ध्यान में रखकर कुन्दकुन्द ने द्रव्य में स्थिति को माना तथा अभेद दृष्टि को विवक्षा से उन्होंने द्रव्य को ही, उत्पादादि त्रयात्मक बतलाया । आचार्य उमास्वामी ने भी इसी प्रकार सत् अर्थात् सत्ता को उत्पादादि त्रयरूप बतलाते हुए इस सम्बन्ध आचार्य कुन्दकुन्द का ही अनुकरण किया है ।

इनके अनुसार सत् द्रव्य का लक्षण है । इस सत् को ही सत्ता या अस्तित्व कहते हैं, अतः सत्, सत्ता, अस्तित्व सभी एकार्थवाची हैं, इन तीनों का ही प्रयोग सत् के अर्थ में किया गया है । इसीलिए उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र (५/२९,३०) में कहा है - **सद् द्रव्यलक्षणं । उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत् ।**

वस्तुतः द्रव्य स्वयं सत् स्वरूप है; चूँकि प्रत्येक द्रव्य सदा स्वभाव में रहता है उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त परिणाम द्रव्य का स्वभाव है, अतः समस्त द्रव्य इस परिणमन स्वभाव में नित्य रहते हैं । स्वभाव में स्थित द्रव्य सत् है । अस्तित्व (सत्) से भिन्न द्रव्य कोई अन्य पदार्थ नहीं है । इसलिए सत् को सत्ता कहा है। आचार्य कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय में सत्ता का स्वरूप इस प्रकार कहा है –

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया ।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ।। गाथा ८ ।।

अर्थात् सत्ता संपूर्ण पदार्थों में स्थित है, अनेकरूप है, अनंत पर्यायों से सहित है, उत्पाद व्यय और ध्रौव्य स्वरूप है , एक है तथा प्रतिपक्षी धर्मों से युक्त है । इसलिए द्रव्य स्वयं ही सत्ता है। सत् स्वतः सिद्ध है । स्वतः सिद्ध का अर्थ है कि इसे किसी ने बनाया नहीं है, वह सदा से अपने स्वरूप के साथ अवस्थित है । स्वतः सिद्धता वस्तु का प्रमुख गुण है । जगत् का व्यवस्थितपना

इसी से बन सकता है, अन्य प्रकार से नहीं। इससे उसकी अनादिता, अनन्तता, स्वसहाय और अखण्डता भलीभाँति सिद्ध हो जाती है। सत्ता व द्रव्य में गुण-गुणी सम्बन्ध है। गुण व गुणी में अनेकत्व नहीं, एकत्व होता है। इसलिए द्रव्य से भिन्न गुण या पर्याय कुछ नहीं होती।

यह पूर्व में ही कहा जा चुका है कि सत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त होता है , अतः सत् स्वरूप द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है, इसलिए द्रव्य का जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत्तारूप सत् स्वरूप है , वही द्रव्य का लक्षण है। अतः द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप है। उत्पाद- व्यय- ध्रौव्य व द्रव्य में अन्यता होती है ; अतः तीनों सत् हैं – उत्पाद - सत् , व्यय- सत्, ध्रौव्य- सत्। तीनों में तीन सत्ता नहीं है। उनमें एक ही अस्तित्व नाम का गुण है। अतः वास्तव में वे तीन सत् नहीं, एक ही सत् है; सत् के अंश हैं। लेकिन 'सत्' के अंश को भी 'सत्' कहा जाता है ; अतः उत्पादादि तीनों 'सत्' हैं। सत्ता तीनों में व्याप्त है – ऐसी सत्ता द्रव्य में व्याप्त है। जैसे – जीव में ज्ञानादि अनन्त गुणों की सत्ता होने पर भी सब मिलकर भी सत्ता एक ही है। सत्ता गुण सब गुणों में और प्रत्येक गुण की प्रत्येक पर्याय में व्याप्त है। 'सत्' स्वरूप सत्ता ही द्रव्य का एक मात्र लक्षण नहीं है; क्योंकि अनेकान्तात्मक द्रव्य के अनन्त स्वरूप हैं, उनमें सत्ता भी एक स्वरूप है; इसलिए अनन्त स्वरूप वाला द्रव्य लक्ष्य है और सत्ता उसका लक्षण है।

सत्ता के दो भेद हैं – १. महासत्ता (सादृश्यास्तित्व) और २. अवान्तरसत्ता (स्वरूपास्तित्व)। इनका स्वरुप इस प्रकार है -

१. महासत्ता (सादृश्यास्तित्व) – सर्वपदार्थसार्थव्यापिनी सादृश्यास्तित्वसूचिका महासत्ता। (पञ्चास्तिकाय त.प्र. ८) सर्वपदार्थ समूह में व्याप्त होने वाली सादृश्य अस्तित्व को सूचित करने वाली महासत्ता है। वस्तुतः सब पदार्थों में अन्वयरूप से 'सत्'- इस प्रकार का जो कथन किया जाता है; उसे सामान्यमात्र का ग्राहक होने से सत्-सामान्य की अपेक्षा "महासत्ता" कहते हैं।

प्रवचनसार में कहा है -

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं ।
उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं ।। गाथा २/५ ।।

अर्थात् निश्चय से इस लोक में धर्म का उपदेश देने वाले श्री वृषभ जिनेन्द्र ने कहा है कि भिन्न-भिन्न लक्षणों वाले द्रव्यों का 'सत्' यह एक व्यापक लक्षण है । समस्त द्रव्यों में सामान्य रूप से व्याप्त रहने के कारण 'सत्' को सादृश्यास्तित्व (महासत्ता) कहते हैं । सामान्य रूप से जो सबसे बड़ा हो , जिसके बाद कोई न हो; उसका नाम 'महासत्ता' है । महासत्ता सबको अपने अन्दर समेट लेती है जैसे – 'हम सब हैं' – यहाँ 'हैं'- इस आधार पर हम सब महासत्ता के अंतर्गत आते हैं । इस प्रकार महासत्ता सर्वपदार्थों में व्याप्त होती है तथा समस्त पदार्थों के सादृश्य को सूचित करती है । सादृश्य अस्तित्व को सूचित करने वाली महासत्ता ही 'सामान्य सत्ता' है ।

इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द ने (पंचास्तिकाय गाथा ८) कहा कि 'महासत्ता की अपेक्षा सत्ता एक है, सब पदार्थों में स्थित है, विश्वरूप है, अनन्त पर्यायात्मक है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वाभाविक है और विपक्ष सहित है । इस तरह हम कह सकते हैं कि --

• महासत्ता त्रिलक्षण वाले समस्त वस्तुओं के सादृश्य को सूचित करती है तथा सब पदार्थों में अन्वयरूप से पाई जाती है; अतः एक है ।

• विश्व की समस्त वस्तुएं त्रिलक्षण स्वभाव सहित रहती हैं । ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है जो सत् स्वरूप ण हो; इसलिए महासत्ता सर्व पदार्थ स्थित है ।

• विश्व की समस्त वस्तुएं त्रिलक्षण स्वभाव द्वारा नाना पदार्थों में व्याप्त होकर रहती हैं, इसलिए महासत्ता सविश्वरूप (नाना रूप) है ।

• विश्व की समस्त वस्तुएं अनन्त द्रव्य – पर्यायों में व्याप्त रहती हैं , अनंत पर्यायों का आधार है , इसलिए महासत्ता 'अनन्त-पर्यायात्मक' है ।

• विश्व की समस्त वस्तुएं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभावी होने से महासत्ता 'त्रिलक्षणात्मक' है ।

• महासत्ता सर्वथा निरपेक्ष नहीं है, विपक्ष सहित है । सत्ता का विपक्ष असत्ता है, एक का विपक्ष अनेक है, सब पदार्थों में स्थित है, विश्वरूपत्व का विपक्ष एकरूपत्व है ,

अनन्तपर्यायात्मकता का विपक्ष एक पर्यायात्मकता है, त्रिलक्षणात्मकता का विपक्ष अत्रिलक्षणपना है।

२. **अवान्तरसत्ता (स्वरूपास्तित्व)** – प्रतिनियतवस्तुवर्तिनी स्वरूपास्तित्वसूचिकाऽवान्तरसत्ता । (पञ्चास्तिकाय त.प्र. ८) अर्थात् प्रतिनियतवस्तुवर्ति तथा स्वरूपास्तित्व की सूचना देने वाली (अर्थात् पृथक्-पृथक् पदार्थ का पृथक्-पृथक् स्वतंत्र अस्तित्व बताने वाली) अवान्तरसत्ता है। अवान्तर सत्ता मात्र अपने तक ही सीमित है। सत् द्रव्य, सत् गुण , सत् पर्याय, सत् उत्पाद , सत् व्यय , सत् ध्रौव्य - इस प्रकार का भेद 'अवान्तर सत्ता' के अंतर्गत आता है। जहाँ तक स्वरूपास्तित्व का प्रश्न है तो प्रत्येक द्रव्य का अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की सीमा में रहकर जो अस्तित्व है,उसका नाम स्वरूप अस्तित्व है अथवा जिसमें प्रदेश भेद नहीं है ; ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय का नाम स्वरूप अस्तित्व है अथवा जिनमें अतद्भाव है, अत्यन्ताभाव नहीं है – ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय का नाम स्वरूप अस्तित्व है। आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार में कहा है –

सब्भावो हि सहावो गुणेहिं सगपज्जएहिं चित्तेहिं।
दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं॥ २/४ ॥

अर्थात् गुणों से, विविध प्रकार की पर्यायों से और उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से द्रव्य का जो सदा सद्भाव रहता है वही उसका स्वभाव स्वरूपास्तित्व है।

इस प्रकार यद्यपि लक्ष्य-लक्षण भावों द्वारा द्रव्य सत्ता से कथंचित भिन्न है; तथापि सत्ता द्रव्य से भिन्न नहीं हैं, अपितु तन्मय है; इसलिए सामान्य-विशेषात्मक सत्ता (महासत्ता व अवान्तर सत्ता) द्रव्य से अभिन्न होने के कारण 'सत्' स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है। जिस प्रकार एक मोती की माला को हार सूत्र (धागा) और मोती- तीन प्रकार से विस्तारित किया जाता है, उसी प्रकार एक द्रव्य, द्रव्य रूप में, गुण रूप में और पर्याय रूप में – तीन प्रकार से विस्तारित किया जाता है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि न केवल द्रव्य अपितु इसमें प्रत्येक क्षण हो रहे उत्पाद और व्यय साथ ही ये संयुक्त रूप में गतिशील तत्त्व तथा ध्रौव्यत्व रूप नित्यता स्थायी तत्त्व हैं। इस तरह मात्र द्रव्य ही नहीं अपितु इसके स्वरूप में विद्यमान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यत्व –

ये सभी द्रव्य को वास्तविक रूप में परिभाषित करते हैं। इस प्रकार सत्ता का स्वरुप समझने से हमें द्रव्य के वास्तविक अस्तित्व और स्वरूप का बोध सहज ही हो जाता है।

आधार ग्रन्थ सूची :

1. **पंचास्तिकाय** - कुन्दकुन्दाचार्य, परमश्रुत प्रभावक मण्डल, अगास, वि.सं. २०२५
2. **पंचास्तिकाय/ श्री जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति**, अगस्त १९८६,पृ. ३/प्रकाशन भारतवर्षीय अनेकांत परिषद १९८९-९०
3. **प्रवचनसार** - तत्त्वप्रदीपिका टीका सहित, सम्पा. डॉ. ए. एन. उपाध्ये, श्रीमद्राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला अगास, १९६४;
4. **नियमसार तात्पर्यवृत्ति,** श्री पद्मप्रभमलधारी देव विरचित, हिंदी अनुवाद – पं. पन्नालाल जी शास्त्री, जैन विद्यापीठ सागर, २०१७
5. **कुन्दकुन्द प्राभृतसंग्रह** - सं. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर १९६०;
6. **कुन्दकुन्द भारती**, दिल्ली से १९७८ में प्रकाशित समयसार में पं .बलभद्र जैन द्वारा लिखित पुरोवाक्
7. **प्रवचनसार - तत्त्वप्रदीपिका** टीका सहित, सम्पा. डॉ. ए. एन. उपाध्ये, श्रीमद्राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला अगास, १९६४;
8. **तत्त्वार्थसूत्र-** आचार्य उमास्वामी, पं. सुखलालजी संघवी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, १९७३
9. **नयचक्र-** श्रीमाइल्लधवल-विरचित ; सम्पादन-अनुवाद - सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचंद जी शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९७१
10. **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश** - (भाग १-४), क्षु. जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९७२

- डॉ. अरिहन्त कुमार जैन,

सहायक आचार्य, जैनविद्या एवं
तुलनात्मक धर्म तथा दर्शन विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय),
लाडनूं, राजस्थान
Mo-9967954146
Email: drarihantpj@gmail.com